1.1 प्रस्तावना Introduction

वैदिक काल :- भारतीय वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद) संसार के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। सामान्यतः वेदों को धार्मिक ग्रंथों के रूप में देखा- समझा जाता है, वेदों की रचना कब और किन विद्वानों ने की , इस विषय में भी विद्वान एक मत नहीं हैं। जर्मन विद्वान मैक्समूलर सबसे पहले व्यत्ति हैं जिन्होंने भारत आकर इस में क्षेत्र में शोध कार्य शुरू किया। उनके अनुसा र, वेदों में सबसे प्राचीन ऋग्वेद है और इसकी रचना 1200 ई0 पू0 में हुई थी। लोकमान्य तिलक ने ऋगवेद में वर्णित नक्षत्र स्थिति के आधार पर इसका रचना काल 4000 ई0 से 2500 ई0 पू0 सिद्ध किया है। इतिहासकार हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई में प्राप्त अवशेषों के आधार पर हमारी सभ्यता एवं संस्कृति को केवल ई 0 पू0 3500 वर्ष पुरानी मानते हैं। हमारे देश भारत में ई 0 पू0 7वीं शताब्दी में लोक भाषा प्राकृत और पाली थी। हमारे देश में संस्कृत भाषा का प्रयोग होता था वेदों की संस्कृत भाषा इतनी समृद्ध एवं परिमार्जित है ओर उनकी विषय- सामग्री इतनी विविध , विस्तृत एवं उच्च कोटि की है कि उस समय इनके विकास में काफी समय अवश्य लगा होगा।

एफ0 डब्लू0 थॉमस के शब्दों में - ऐसा कोई देश नहीं है जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम इतने प्राचीन समय में प्रारम्भ हुआ हो जितना भारत में या जिसने इतना स्थायी ओर शक्तिशाली प्रभाव उत्पन्न किया हो जितना भारत *(There has been no country except India where the love of learning had so early an origin or has exercised so lasting and powerful influence.- F.W. Thomas) में । और यह बात भी सभी स्वीकार करते हैं कि भारत में 2500 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 तक वेदों का वर्चस्व रहा। इतिहासकार इस काल को वैदिक काल कहते हैं। वैदिक काल में हमारे देश में एक समृद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ।

1.2 उद्देश्य Objectives

i. वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य अभिलक्षण को जान सकेगे |
ii. वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्यों , पाठ्यचर्या, शिक्षण विधिया, अनुशासन आदि को समझ सकेगे |
iii. गुरु शिष्य समबन्ध को समझ कर आज समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत कर सकेगे |
iv. वैदिक कालीन शिक्षा के मुख्य शिक्षा केन्द्रों के बारे में जान सकेगे |

1.3 शिक्षा की संरचना एवं संगठन Structure and Organization of Education

वैदिक कालीन की शिक्षा की सरचना एव संगठन निम्नलिखित है|

1.3.1 शिक्षा का अर्थ Meaning of Education

सामान्यतः बच्चों को परिवारों में विद्यारम्भ संस्कार और गुरूकुलों में उपनयन संस्कार के बाद विभिन्न विषयों में दिए जाने वाले ज्ञान एवं कला- कौशल में प्रशिक्षण को शिक्षा कहा जाता था। यह शिक्षा का संकुचित अर्थ था। परन्तु जब शिष्य गुरूकुल शिक्षा पूरी कर लेते थे तो समावर्तन समारोह होता था और इस समारोह में गुरू शिष्यों को उपदेश यह भी देते थे कि स्वाध्याय में कभी प्रमाद (आलस्य) मत करना। इसका अर्थ है कि उस काल में जीवन भर स्वाध्याय द्वारा ज्ञानार्जन किया जाता था। यह शिक्षा का व्यापक अर्थ था।

वैदिक काल में शिक्षा निम्न प्रकार थी |

I. प्रारम्भिक शिक्षा- वैदिक काल में प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में होती थी। लगभग 5 वर्ष की आयु पर किसी शुभ दिन बच्चे का विद्यारम्भ संस्कार किया जाता था। यह संस्कार परिवार के कुल पुरोहित द्वारा कराया जाता था । बच्चे को स्नान कराकर नए वस्त्र पहनाए जाते थे ओर कुल पुरोहित के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता था। कुल पुरोहित नया वस्त्र बिछाता था और उस पर चावल बिछाता था। इसके बाद वेद मन्त्रों द्वारा देवताओं की आराधना की जाती थी ओर बच्चे की उंगली पकड़कर उसके द्वारा बिछे हुए चावलों में वर्णमाला के अक्षर बनवाए जाते थे। कुल पुरोहित को भोजन कराकर दक्षिणा दी जाती थी। कुल पुरोहित बच्चे को आशीर्वाद देता था और इसके बाद बच्चे की शिक्षा नियमित रूप से प्रारम्भ होती थी।

II. उच्च शिक्षा- वैदिक काल में उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरूकुलों में होती थी। 8 से 12 वर्ष की आयु पर बच्चों का गुरूकुलों में प्रवेश होता था , ब्राह्मण बच्चों का 8 वर्ष की आयु पर , क्षत्रिय बच्चों का 10 वर्ष की आयु पर और वैश्य बच्चों का 12 वर्ष की आयु पर । गुरूकुलों में प्रवेश के समय बच्चों का उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार के बाद उनकी उच्च शिक्षा प्रारम्भ होती थी।

1.3.2 व्यावसायिक शिक्षा -

वैदिक काल में आज की व्यावसायिक शिक्षा को कर्म शिक्षा कहा जाता था। प्रारम्भिक वैदिक काल में यह शिक्षा छात्रों की योग्यता और क्षमता के आधार पर दी जाती थी और उत्तर वैदिक काल में छात्रों के वर्ण के आधार पर दी जाती थी। आधुनिक युग में व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी उत्तर वैदिक कालीन विचार मान्य नहीं है। आज संसार के अधिकतर देशों में लोकतन्त्र शासन प्रणाली है।

लोकतन्त्र मनुष्य- मनुष्य में किसी भी प्रकार का भेद नहीं करता। आज सभी मनुष्यों को अपनी योग्यता एवं क्षमतानुसार किसी भी प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है और ऐसा ही प्रारम्भिक वैदिक काल में था। कहना न होगा कि यह देन भी वैदिक का लीन शिक्षा की ही है। और इस बीच व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र और स्वरूप में जो अन्तर हुआ है वह तो विकास प्रकिया का परिणाम है।

1.3.3 वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य अभिलक्षण Main Characteristics of Vedic Education System

वैदिक काल में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ उसे वैदिक शिक्षा प्रणाली कहते है। पूरे वैदिक काल में शिक्षा का प्रशासन एवं संगठन तो सामान्यतः एक सा रहा परन्तु समय की परिस्थितियों और ज्ञान एवं कला- कौशल के क्षेत्र में विकास के साथ- साथ उसकी पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियों में विकास होता रहा। यहाँ वैदिक शिक्षा प्रणाली के मुख्य अभिलक्षणों (Main Features) का क्रमबध वर्णन प्रस्तुत है।

1.3.4 शिक्षा का प्रशासन एवं वित्त Adminisation and finance of Education

वैदिक शिक्षा प्रणाली के प्रशासन एवं वित्त के सम्बन्ध में तीन तथ्य उल्लेखनीय हैं-

i. राज्य के नियन्त्रण से मुक्त - वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व नहीं था परिणामतः उस पर राज्य का कोई नियन्त्रण भी नहीं था। उस पर शिक्षा पूर्णरूप से गुरूओं के व्यक्तिगत नियन्त्रण में थी।

ii. निःशुल्क शिक्षा- वैदिक काल में शिक्षा पूर्णरूप से निशुल्क रही। शिष्यों के आवास एवं भोजन की व्यवस्था भी गुरू स्वयं करते थे। लेकिन शिक्षा पूर्ण होने पर शिष्य गुरूओं को अपनी सामर्थ्यानुसार गुरू दक्षिणा अवश्य देते थे।

iii. आय के स्रोत-दान, भिक्षा और गुरू दक्षिणा- वैदिक काल में गुरूकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित अनुदान प्राप्त नहीं होता था। उस समय राजा, महाराजा और समाज के धनीवर्ग के लोग इन गुरूकुलों को स्वेच्छा से भूमि , पशु, अन्न, वस्त्र, पात्र और मुद्रा दान स्वरूप भेंट करते थे। गुरूकुलों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शि ष्य समाज से नित्य भिक्षा माँग कर लाते थे। इन गुरूकुलों की आय का तीसरा स्रोत था- गुरू दक्षिणा।

1.4शिक्षा के उद्देश्य एवं आदर्श Aims and Ideal of Education

डॉ0 अल्तेकर के शब्दो में ईश्वर भक्ति तथा धार्मिकता की भावना ,चरित्र निमार्ण ,व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्यों का पालन , सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार प्राचीन भारत में शिक्षा के मुख्य उद्देश्य एवं आर्दश थे। उस काल में शिक्षा को ज्ञान के पर्याय के रूप में लिया जाता था। इससे स्पष्ट है कि उस काल में शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य ज्ञान का विकास था। समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन और राष्ट्रीय संस्कृति के संरक्षण एवं विकास पर भी उस काल में विशेष बल दिया जाता था। मोक्ष की प्राप्ति तो उस काल में मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना जाता था और इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षा द्वारा उसका आध्यात्मिक विकास किया जाता था।

इन सब उद्देश्यों को हम आज की भाषा में निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

i. ज्ञान का विकास- यह वैदिक कालीन शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य था। तब ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र माना जाता था। (ज्ञानं मनुजस्य तृतीयं नेत्रं) और यह माना जाता था कि ये दो नेत्र तो हमें केवल दृश्य जगत का ज्ञान भर कराते हैं परन्तु यह तीसरा नेत्र हमें दृश्य और सूक्ष्म दोनों जगत का ज्ञान कराता है यह हमें सत्य- असत्य का भेद स्पष्ट करता है , करणीय तथा अकरणीय कर्मों का भेद स्पष्ट करता है और भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त करने का मार्ग स्पष्ट करता है।

ii. स्वास्थ्य संरक्षण एवं संवर्द्धन - ऋषि आश्रमों और गुरूकुलों में शिष्यों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण और संवर्द्धन पर विशेष बल दिया जाता था और उन्हें उचित आहार-विहार और आचार- विचार की शिक्षा दी जाती थी। शारीरिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए शिष्यों को प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठना होता था , दाँतून एवं स्नान करना होता था , व्यायाम करना होता था , सादा भोजन करना होता था , नियमित दिनचर्या का पालन करना होता था ओर व्यसनों से दूर रहना होता था। शिष्यों के मानसिक स्वास्थ्य के संरक्षण एवं संवर्द्धन के लिए उन्हें उचित आचार-विचार की ओर उन्मुख किया जाता था|

iii. जीविकोपार्जन एवं कला-कौशल की शिक्षा- प्रारम्भिक वैदिक काल में शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार कृषि, पशुपालन एवं अन्य कला- कौशलों की शिक्षा दी जाती थी। उस समय हमारा देश धन-धान्य से सम्पन्न था , लोग बहुत अच्छा जीवन जीते थे। परन्तु उत्तर वैदिक काल में ब्राहमणों ने स्वार्थ के वशीभूत होकर कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था को जन्म

आधारित वर्ण व्यवस्था में बदल दिया जिसके परिणामस्वरूप लोगों को वर्णानुसार शिक्षा दी जाने लगी| वैदिक काल के इस अन्तिम चरण में शूद्रों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित करना धूर्तता व स्वार्थ भरा कदम था वे शिक्षा अपने-अपने परिवारों में प्राप्त करते थे।

iv. संस्कृति का संरक्षण एवं विकास- वैदिक काल में शिक्षा का एक उद्देश्य अपनी संस्कृति का संरक्षण और हस्तान्तरण था। उस काल मे गुरूकुलों की सम्पूर्ण कार्य पद्धति धर्मप्रधान थी। उस काल में शिष्यों को वेद मन्त्र रटाए जाते थे , संध्या-वन्दन की विधियाँ सिखाई जाती थी और आश्रमा नुसार कार्य करने का उपदेश दिया जाता था। उस पूरे काल में शिक्षा का एक ऐसा क्रम चला कि उसके प्रभाव से अनेक लोग गृहस्थ आश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे और जंगलों में रहते हुए अध्ययन ,चिन्तन, मनन और निदिध्यासन करते थे और नए-नए तथ्यों की खोज करते थे। इनमे से कुछ लोग सन्यास आश्रम में प्रवेश करते थे और ध्यान और समाधि द्वारा मोक्ष प्राप्त करते थे। इससे इस देश की संस्कृति का संरक्षण और विकास हुआ।

v. नैतिक एवं चारित्रिक विकास- वैदिक काल में चरित्र निर्माण से तात्पर्य मनुष्य को धर्मसम्मत आचरण में प्रशिक्षि त करने से लिया जाता था , उसके आहार- विहार और आचार-विचार को धर्म के आधार पर उचित दिशा देने से लिया जाता था।

vi. आध्यात्मिक उन्नति- वैदिक काल में शिक्षा का अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मनुष्य के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों पक्षों को पवित्र बनाकर उन्हें चरम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर करना था।

1.4.1 शिक्षा की पाठ्यचर्या Curriculam of Education

वैदिक काल में शिक्षा दो स्तरों में विभाजित थी- प्रारम्भिक और उच्च।

1. प्रारम्भिक शिक्षा की पाठ्यचर्या- वैदिक काल में प्रारम्भिक स्तर की पा ठ्यर्चया में भाषा , व्याकरण, छन्दशास्त्र और गणना का सामान्य ज्ञान और सामाजिक व्यवहार एवं धार्मिक क्रियाओं के प्रशिक्षण को स्थान प्राप्त था। उत्तर वैदिक काल में उसमें नीतिप्रधान कहानियों को और जोड़ दिया गया। जो लोग अपने बच्चों को उच्च शिक्षा हेतु गुरूकुलों में प्रवेश दिलाना चाहते थे वे उन्हें संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण का अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान कराते थे।

2. उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या- इस काल में उच्च स्तर पर संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण तथा धर्म एवं नीतिशास्त्र की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। प्रारम्भिक वैदिक काल में वैदिक साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों , कर्मकाण्ड, ज्योतिर्विज्ञान, आयुविज्ञान, सैनिक शिक्षा, कृषि, पशुपालन, कला-कौशल, राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र और प्राणिशास्त्र की शिक्षा ऐच्छिक थी। उत्तर वैदिक काल में उच्च शिक्षा की इस पाठ्यचर्या में अनेक अ न्य विषय सम्मिलित किए गए .,जैसे- इतिहास, पुराण, नक्षत्र विद्या न्यायशास्त्र, अर्थशास्त्र, देव विद्या, ब्रह्म विद्या और भूत विद्या इसे विशिष्ट शिक्षा की संज्ञा दी जा सकती है। शिष्य इनमें से अपनी रूचि के कोई भी विषय अध्ययन करने के लिए स्वतन्त्र थे।

वैदिक कालीन शिक्षा की पाठ्यचर्या को उसकी प्रकृति के आधार पर निम्नलिखित दो रूपों में विभाजित किया जाता है-

1. अपरा (भौतिक) पाठ्यचर्या- इसके अन्तर्गत भाषा, व्याकरण, अंकशास्त्र, कृर्षि, पशुपालन, कला (संगीत एवं नृत्य), कौशल (कताई, बुनाई, रंगाई, काष्ठ कार्य , धातु कार्य एवं शिल्प), अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, प्राणिशास्त्र, सर्प विद्या, तर्कशास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान एवं सैनिक शिक्षा का अध्ययन और व्यायाम, गुरूकुल व्यवस्था एवं गुरू सेवा क्रियाएँ सम्मिलित थी।

2. परा (आध्यात्मिक) पाठ्यचर्या- इसके अन्तर्गत वैदिक साहित्य (वेद, वेदांग एवं उपनिषद्), धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र का अध्ययन और इन्द्रिय निग्रह , धर्मानुकूल आचरण , ईश्वर भक्ति , सन्ध्यावन्दन और यज्ञादि क्रियाओं का प्रशिक्षण सम्मिलित था।

1.4.2 शिक्षण विधियाँ Teaching Methods

वैदिक काल में शिक्षण सामान्यतः मौखिक रूप से होता था और प्रायः प्रश्नोत्तर , शंका-समाधान, व्याख्यान और वाद-विवाद द्वारा होता था। उस समय भाषा की शिक्षा के लिए अनुकरण विधि और कला-कौशल की शिक्षा के लिए प्रदर्शन एवं अभ्यास विधियों का प्रयोग किया जाता था। उपनिषदकारों ने शिक्षण की एक बहुत प्रभावी विधि का विकास किया था जिसे श्रवण , मनन और निदिध्यासन विधि कहते है। साफ जाहिर है कि उस समस उपरोक्त सब विधियों का प्रयोग कुछ अपने ढंग से होता था अतः यहाँ इनके प्राचीन रूप को स्पष्ट करना आवश्यक है।

i. अनुकरण, आवत्ति एवं क ण्ठस्थ विधि- अनुकरण विधि सीखने की स्वाभविक विधि है। वैदिक काल में प्रारम्भिक स्तर पर भाषा और व्यवहार की शिक्षा प्रायः इसी विधि से दी जाती थी। उच्च स्तर पर भी इसका प्रयोग होता था- गुरू शिष्यों के सम्मुख वेद मन्त्रों का उच्चारण करते थे , शिष्य उनका अनुकरण करते थे, उन्हें बार-बार उच्चारित करते थे और इस प्रकार उन्हें कण्ठस्थ करते थे।

ii. व्याख्या एवं दृष्टान्त विधि- वैदिक काल में शिष्यों को व्याकरण का कोई नियम अथवा वेदों का कोई मन्त्र कण्ठस्थ कराने के बाद गुरू उसकी व्याख्या करते थे , उसका अर्थ एवं भाव स्पष्ट करते थे और उसके अर्थ एवं भाव को स्पष्ट करने के लिए उपमा , रूपक और दृष्टान्तों का प्रयोग करते थे।

iii. प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ विधि- उत्तर वैदिक काल में उपनिषदों की शैली के आधार पर प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ विधियों का विकास हुआ। प्रारम्भिक वैदिक काल में गुरू उपदेश देते थे , व्याख्यान देते थे और शिष्य शान्तिपूर्वक सुनते थे , उत्तर वैदिक काल में शिष्य अपनी शंका प्रस्तुत करते थे और गुरू उनका समाधान करते थे।उच्च शिष्या में उच्च स्तर के शिष्यों और गुरूओं के बीच वाद-विवाद भी होता था। अति गूढ़ विषयों पर चर्चा हेतु अधिकारी विद्वानों के सम्मेलन भी बुलाए जाते थे , उनके बीच शास्त्रार्थ होता था , शिष्य इस सबको सुनते थे और अपने तत्सम्बन्धी ज्ञान में वृद्धि करते थे।

iv. कथन,प्रदर्शन एवं अभ्यास विधि- वैदिक काल में कृषि , पशुपालन, कला-कौशल, सैन्य शिक्षा और आयुर्विज्ञा न आदि क्रियाप्रधान विषयों की शिक्षा कथन , प्रदर्शन और अभ्यास विधि से दी जाती थी। गुरू सर्वप्रथम सिखाए जाने वाली क्रिया के सम्पादन की विधि बताते थे और फिर उसे स्वयं करके दिखाते थे ., शिष्य उनका अनुकरण कर यथा क्रिया का अभ्यास करते थे और धीरे-धीरे उसमें दक्षता प्राप्त करते थे।

v. श्रवण, मनन, निदिध्यासन विधि- यह विधि भी उपनिषदकारों की देन है। उस काल में गुरू जो भी व्याख्यान देते थे, वेद मन्त्रों आदि कि जो भी व्याख्या करते थे , धर्म, दर्शन एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी देते थे, शिष्य उनको ध्यानपूर्वक सुनते थे, उसके बाद उस पर मनन करते थे, चिन्तन करते थे।

vi. तर्क विधि- उत्तर वैदिक काल में तर्कशास्त्र जैसे गूढ़ विषयों के शिक्षण हेतु तर्क विधि का विकास हुआ। उस समय इस विधि के पाँच पद थे- प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, अनुपयोग और निगमन।

vii. कहानी विधि- उत्तर वैदिक काल में आचार्य विष्णु शर्मा ने राजकुमारों को नीति की शिक्षा देने के लिए कहानियों की रचना की। ये कहानियाँ पंचतन्त्र और हितोपदेश के नाम से संग्रहीत हैं। कहानी सुनाने के बाद आचार्य शिष्यों से प्रश्न पूछते थे। इन प्रश्नों में अन्तिम प्रश्न यह होता था कि इस कहानी से आपको क्या शिक्षा मिलती है।

1.4.3 अनुशासन Discipline

प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्पर्य शारीरिक , मानसिक और आत्मिक संयम से लिया जाता था। उस काल में शारीरिक , संयम से तात्पर्य था- ब्रह्मचर्य ब्रत का पालन , श्रंगार न करना , सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग न करना, नृत्य एवं संगीत में आन्नद न लेना , मादक पदार्थो का प्रयोग न करना, जुआ न खेलना , गाय न मारना , झूट न बोलना और चुगली न करनां , मानसिक संयम से तात्पर्य था- इन्द्रियनिग्रह, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन और काम , क्रोध, लोभ, मोह और मद से दूर रहना , और आत्मिक संयम से तात्पर्य था- आत्मा के स्वरूप को पहचानना, सबमें एकात्म भाव देखना और सबके कल्याण के लिए कार्य करना। परन्तु उत्तर वैदिक काल में शिष्यों द्वारा गुरूओं के आदेशों और नियमों के पालन को ही अनुशासन माना जाने लगा और शिष्य इनका पा लन नहीं करते थे उन्हें दण्ड दिया जाता था। पर शारीरिक दण्ड विशेष परिस्थितियों में ही दिया जाता था।

1.4.4 शिक्षक (गुरू)Teacher

वैदिक काल में अति विद्वान , स्वाध्यायी, धर्मपरायण और सच्चरित व्यक्ति ही गुरू हो सकते थे। ये अतिज्ञानी के साथ-साथ अति संयमी भी होते थे। उस समय इन्हें समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। ये देव रूप में प्रतिष्ठित थे। इन्हें धियावसु (जिसकी बुद्धि ही धन है), सत्यजन्मा (सत्य को जानने वाला) और विश्ववेदा (सर्वज्ञ) आदि विशेषणों से सम्बोधित किया जाता था। ये अपने गुरूकुलों के पूर्ण स्वामी होते थे, पर पूर्ण स्वामित्व के साथ पूर्ण उत्तरदायित्व जुड़ा था।ये अपने गुरूकुलों की सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होते थे। ये अपने शिष्यों के आवास , भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करते थे, उनके स्वास्थ की देखभाल करते थे और उनके सर्वांगीण विकास के लिए प्रयत्न करते थे।

1.5 गुरू-शिष्य सम्बन्ध Relation of Teacher And Students

वैदिक काल में गुरू और शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। गुरू शिष्यों को पुत्रवत् मानते थे और शिष्य गुरूओं को पितातुल्य मानते थे।- उपर से प्रेम बरसता था और नीचे से श्रद्धा उमड़ती थी। वैदिक काल में गुरूकुलों की व्यवस्था गुरू और शिष्य दोनों संयुक्त रूप से करते थे। यहाँ गुरूओं के शिष्यों के प्रति और उत्तरदायित्वों एवं कार्यों का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है।

1.5.1 गुरूओं के शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य-

वैदिक काल में गुरू शिष्यों के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी होते थे। वे शिष्यों के प्रति निम्नलिखित उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यो का निर्वाह करते थे -

(1) शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था करना।

(2) शिष्यों के स्वास्थ की देखभाल करना , उनके अस्वस्थ होने पर उपचार की व्यवस्था करना।

(3) शिष्यों को भाषा, धर्म और नीतिशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य रूप से कराना।

(4) शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार (प्रारम्भिक वैदिक काल) अथवा वर्णानुसार (उत्तर वैदिक काल) विशिष्ट विषयों एवं क्रियाओं (कर्म) की शिक्षा देना।

(5) शिष्यों को सदाचार की शिक्षा देना और उनका चरित्र निर्माण करना।

(6) शिष्यों को करणीय कर्मों की ओर उन्मुख करना और अकरणीय कर्मों से रोकना।

(7) शिष्यों का सर्वांगीण विकास करना।

(8) शिक्षा पूरी होने पर शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा देना और उनका मार्गदर्शन करना।

1.5.2 शिष्यों के गुरूओं के प्रति कर्त्तव्य-

वैदिक काल में शिष्य गुरूओं के प्रति पूर्णरूप से समर्पित होते थे। वे गुरूओं के प्रति निम्नलिखित उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का पालन करते थे-

(1) गुरूकुल की सफाई करना और उसकी पूर्ण व्यवस्था करना।

(2) गुरूगृह की सफाई करना, गुरू के स्थान एवं पूजा-पाठ की व्यवस्था करना।

(3) गुरू एवं गुरूकुलवासियों के लिए भिक्षा माँगना।

(4) गुरू एवं गुरूकुलवासियों के भोजन की व्यवस्था करना।

(5) गुरूओं के सोने से पहले उनके पैर दबाना।

(6) गुरूओं के आदेशों का पूर्ण निष्ठा से पालन करना।

(7) शिक्षा पूरी होने पर अपनी सामर्थ्यानुसार गुरू दक्षिणा देना।

1.5.3 परीक्षाएँ एवं उपाधियाँ- Examination and Degree

वैदिक काल में आज की तरह की परीक्षाएँ नहीं होती थीं। सर्वप्रथम तो गुरू ही मौखिक रूप से प्रश्न पूछ कर यह निर्णय करते थे कि किसी शिष्य ने यथा ज्ञा न प्राप्त कर लिया है अथवा नहीं। इसके बाद

उन्हें विद्वानों की सभा में उपस्थित किया जाता था। ये विद्वान इन छात्रों से प्रश्न पूछते थे और सन्तुष्ट होने पर उन्हें सफल घोषित करते थे। वैदिक काल में सफल छात्रों को कोई प्रमाणपत्र नहीं दिए जाते थे, उनकी योग्यता ही उनका प्रमाणपत्र होती थी। परन्तु जो छात्र गुरूकुलों का 12 वर्षीय सामान्य पाठ्यक्रम अथवा किसी एक वेद का अध्ययन पूरा कर लेते थे उन्हें स्नातक, जो 24 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं दो वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें वसु ,जो 36 वर्षीय पाठ्यक्रम (किन्हीं तीन वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें रूद्र और जो 48 वर्षीय पाठ्यक्रम (चारों वेदों का अध्ययन) पूरा कर लेते थे उन्हें आदित्य कहा जाता था।

1.5.4 समावर्तन समारोह- Convocation Programme

वैदिक काल में शिष्यों की गुरूकुलीय शिक्षा पूरी होने पर समावर्त न समारोह होता था। समावर्तन का शाब्दिक अर्थ है - घर लौटना। समावर्तन समारोह में सर्वप्रथम छात्रों को ब्रह्मचारी वस्त्र उतार कर गृहस्थ वस्त्र पहनाए जाते थे। इसके बाद गुरू उन्हें यज्ञ वेदी के सामने बैठाते थे। वेद मन्त्रों से देवताओं की आराधना होती थी। इसके बाद गुरू शिष्यों को उपदेश (दीक्षान्त भाषण) देते थे। वे उन्हें गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्य पालन , समान सेवा और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य पालन का उपदेश देते थे और अध्ययन में कभी प्रमाद (आलस्य) न करने का उपदेश देते थे। वे उन्हें पितृऋण , गुरूऋण और देवऋण से उऋण होने का उपदेश देते थे। तैत्तिरीय उपनिषद में इस प्रकार के दीक्षान्त भाषण का उल्लेख है। आज के अधिकतर भारतीय विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त समारोहों में तैत्तिरीय उपनिषदीय दीक्षान्त उपदेश दिए जाते हैं। उस काल में दीक्षान्त उपदेश देने के बाद गुरू शिष्यों को गृहस्थ जी वन में प्रवेश की आज्ञा प्रदान करते थे और उन्हें आशीर्वाद देकर गुरूकुल से घर के लिए विदा करते थे।

1.5.5 स्त्री शिक्षा-Women Education

यूँ तो प्रारम्भिक वैदिक काल में स्त्रियों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार प्राप्त था परन्तु उत्तर वैदिक काल में उन्हें वर्णानुसार शिक्षा ही दी जाती थी। शूद्र वर्ण की स्त्रियों को तो ब्राहमणीय व्यवस्था ने धूर्तता से उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। आज भी ब्राहमणी व्यवस्था की इनके विकास को नही चाहती है इनके विकास में बाधक बनाती है लेकिन आज इस वर्ग की कन्या शिक्षा , मेहनत व तर्क के बल पर बड़े से बड़े मुकाम पर पहुचकर संसार के विकास में अपना योगदान कर रही है | अल्तेकर ने एक तथ्य यह उजागर किया है कि वैदिक काल के अन्तिम चरण (ब्राह्मण काल) में बालिकाओं के विवाह की आयु 12 वर्ष निश्चित कर दी गई थी और साथ ही उनके लिए वेदों का अध्ययन निषेध कर दिया गया था। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी है कि उस काल में स्त्रियों के लिए अलग से कोई गुरूकुल नहीं थे। परिणामतः सामान्य परिवारों की बच्चियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थीं ,केवल गुरूओं की पुत्रियाँ, रजघरानों और राज्यों में ऊँचं पदों पर आसीन व्यक्तियों की पुत्रियाँ और अति धनी एवं अति

विशिष्ट व्यक्तियों की पुत्रियाँ ही इन गुरूकुलों में प्रवेश ले पाती थीं। यूँ तो उस काल में विश्वारा , अपाला, होमशा, शाश्वती और घोषा आदि अनेक विदुषी महिलाओं का भी उल्लेख मिलता है परन्तु वास्तविकता यह है कि उस पूरे काल में स्त्री शिक्षा बहुत सीमित थी और यदि यह कहें कि उस काल में स्त्री शिक्षा उपेक्षित रही तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। जिस काल में स्त्रियों पर प्रतिबंध लगाये जाते है वह काल अच्छा नही होता है|

1.5.6 वैदिक कालीन मुख्य शिक्षा केन्द्र

वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों और उच्च शिक्षा की व्यवस्था गुरूकुलों में होती थी। ये गुरूकुल प्रारम्भिक वैदिक काल में तो प्रायः जन कोलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थापित होते थे परन्तु उत्तर वैदि क काल में बड़े-बड़े नगरों और तीर्थ स्थानों पर स्थापित होने लगे थे। उस काल में तीर्थ स्थान धर्म प्रचार के केन्द्र होने के साथ- साथ उच्च शिक्षा के केन्द्रों के रूप में विकसित हुए। बड़े-बड़े नगरों तक्षशिला, पाटलिपुत्र, मिथिला, धार, कन्नौज, नासिक, कर्नाटक और काँची उस समय के मुख्य शिक्षा केन्द्र थे। यहाँ इनमें से मुख्य शिक्षा केन्द्रों का वर्णन संक्षेप में प्रस्तुत है।

1. तक्षशिला- तक्षशिक्षा उस काल में उत्तरी भारत के तत्कालीन गांधार राज्य को राजधानी था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि इस नगर को तत्कालीन गांधार नरेश भारत ने अ पने पुत्र तक्ष के नाम से बसाया था। आगे चलकर उसने इसे अपने राज्य की राजधानी बनाया ओर साथ ही यहाँ देश के विभिन्न भागों से विद्वानों को बुलाकर बसाया। उसने उन्हें गाँव के गाँव दान में दिए और उन पर शिक्षा की व्यवस्था का कार्य भार सौंपा। इस प्रकार यह नगर उस समय राज्य की राजधानी के साथ-साथ एक शिक्षा नगर के रूप में विकसित हुआ। ऐसा उल्लेख मिलता है कि यहाँ संस्कृत भाषा,साहित्य और व्याकरण की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थे, कोई किसी वेद की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थे और कोई धर्म एंव दर्शन की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थे। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि कुछ विद्वान आयुर्विज्ञान के विशेषज्ञ थे। परिणामतः उस काल में तक्षशिला वैदिक साहित्य , धर्म, दर्शन और आयुर्विज्ञान की शिक्षा के मुख्य केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। यहाँ कर्म (कला-कौशल एवं व्यवस्यों) की शिक्षा की भी उत्तम व्यवस्था थी। यही कारण है कि गांधार राज्य उस समय का वैभवशाली राज्य था। ई 0 पू0 7वीं शताब्दी तक यह वैदिक और ब्राह्मणीय शिक्षा का मुख्य केन्द्र रहा।

2. केकय- केकय मध्य भारत के तत्कालीन केकय राज्य की राजधानी थी। उपनिषद काल में यह शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। यहाँ संस्कृत भाषा, व्याकरण, साहित्य, वेद, धर्म और दर्शन की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। प्राचीन ग्रंन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि केकय नरेश अश्वपति स्वयं बड़े विद्वान

थे, वे विद्वानों का आदर करते थे। उन्होंने अपनी राजधानी में बड़े- बड़े विद्वानों को बसाया था। वे समय-समय पर राजधानी में विद्वत् सम्मेलन भी करते थे

3. मिथिला- मिथिला मध्य भारत के तत्कालीन मिथिला राज्य की राजधानी था। यूँ तो यह वैदिक काल से पहले से ही शिक्षा का मुख्य केन्द्र रहा था, यहाँ धर्म और दर्शन के विद्वानों के सम्मेलन होते थे परन्तु उपनिषद काल में तो यह वैदिक शिक्षा के मुख्य केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इस नगर में धर्म और दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान निवास करते थे। दूर- दूर से लोग धर्म और दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने यहाँ आते थे। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि इस नगर में प्रतिद्वन्दी राज्यों से भी लोग धर्म और दर्शन की शिक्षा प्राप्त करने आते थे और उन्हें बिना किसी भेद- भाव के यह शिक्षा दी जाती थी। उत्तर वैदिक काल में यहाँ कला-कौशल एवं सैनिक शिक्षा की भी व्यवस्था हुई।

4. प्रयाग- भारत के पूर्वी भाग में स्थित प्रयाग (इलाहाबाद) प्रारम्भ से ही ऋषियों की तपोभूमि रहा है। वैदिक काल में इस क्षेत्र के गंगातटवर्ती क्षेत्रों में अनेक ऋषि आश्रम थे। ये आश्रम धर्म और दर्शन की शिक्षा के मुख्य केन्द्र थे। यहाँ बड़े-बड़े विद्वान भी अपने शंकाओं का समाधान करने आया करते थे। यह एक तीर्थ स्थान तथा धार्मिक स्थल था और ऋषियों की तपोभूमि था इसलिए यह धर्म एवं दर्शन की शिक्षा के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ।

5. काशी- भारत के पूर्वी भाग में स्थित काशी(वाराणसी) भी प्रारम्भ से ही ऋषियों की तपोभूमि और विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ का मुख्य केन्द्र रहा है। यहाँ के गंगातटवर्ती क्षेत्रों में अनेक ऋषि आश्रम थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि काशी नरेश अजातशत्रु उपनिषदीय ज्ञान (ब्रह्म विद्या) के पंडित थे। उन्होंने अपने शासन काल में यहाँ विद्वानों को आमंत्रित किया था। और आत्मा- परमात्मा और ब्रह्म के स्वरूप के विषय में शास्त्रार्थ कराया था। बस तभी से यह विभिन्न मतों की शि क्षा और शास्त्रार्थ के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। वैदिक शिक्षा के लिए तो यह जितना तब प्रसिद्ध था उतना ही मध्यकाल में प्रसिद्ध रहा और उतना ही आज भी प्रसिद्ध है।

6. काँची- काँची दक्षिण भारत का एक तीर्थ स्थान है। धार्मिक लोग इसे दक्षिण काशी कहते हैं। भारत के नक्शे में यह आज काँजीवरम है। उत्तर वैदिक काल में यहाँ वेदों के विद्वान पहुँच गए थे और उन्होंने वैदिक धर्म और दर्शन की शिक्षा देना शुरू कर दिया था। ये ब्राह्मण पुरोहित थे , कर्मकाण्डी थे इसलिए इन्होंने यहाँ कर्मकाण्डप्रधान शिक्षा का ही विकास किया। तब से लेकर आज तक यह ब्राह्मणीय शिक्षा का मुख्य केन्द्र चला आ रहा है। और चौंकने वाला तथ्य यह है कि मध्यकाल (मुस्लिम काल) में भी यह ब्राह्मणीय शिक्षा का मुख्य केन्द्र रहा।

1.5.7 वैदिक शिक्षा प्रणाली का मूल्यांकन अथवा गुण-दोष विवेचनMerits and Demerits of Vedic Education

वैदिक शिक्षा प्रणाली का मूल्यांकन अथवा गुण-दोष विवेचन प्रस्तुत है।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के गुण :- यदि हम वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली को अपने देश भारत की वर्तमान परिस्थितियों, आवश्यकताओं, सम्भावनाओं और आकांक्षाओं की दृष्टि से देखें- समझे तो उसमें निम्नलिखित गुण स्पष्ट होंगे जिन्हें आज भी ग्रहण करना चाहिए।

1. निःशुल्क शिक्षा- वैदिक काल में गुरूकुलों में शिष्यों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। उस समय शिष्यों के आवास, भोजन एवं वस्त्रादि की व्यवस्था भी निःशुल्क होती थी। इस व्यय की पूर्ति राजा एवं धनी लोगों से प्राप्त दान , भिक्षाटन और गुरूदक्षिणा द्वारा होती थी। आज संसार के सभी देशों में एक निश्चित स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क है, हमारे देश भारत में भी।

2. शिक्षा का व्यापक अर्थ- वैदिक काल में छात्रों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे गुरूकल शिक्षा पूरी करने के बाद भी स्वाध्याय में कभी आलस्य न करें। उस काल में लोग जीवन में अन्य कार्यों के सम्पादन के साथ-साथ निरन्तर ज्ञानार्जन करते थे। गृहस्थाश्रम के बाद वाणप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद तो लोग अध्ययन और चिन्तन ही किया करते थे और समाज को अपने अध्ययन एवं अनुभवों से लाभ पहुँचाया करते थे। आज संसार के प्रायः सभी देशों में सतत् शिक्षा की व्यवस्था है,

3. शिक्षा के व्यापक उद्देश्य- वैदिक काल में शिक्षा के उद्देश्य अति व्यपक थे। उस काल में शिक्षा द्वारा मनुष्यों का शारीरिक एवं मानसिक विकास किया जाता था , उन्हें सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का बोध कराया जाता था , उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास किया जाता था , उन्हें कर्म (व्यवसाय) की शिक्षा दी जाती थी और इस सबके साथ- साथ उनका आध्यात्मिक विकास किया जाता था। हाँ, यह बात अवश्य है कि उस समय सर्वाधिक बल ज्ञा न के विकास, चरित्र निर्माण और आध्यात्मिक विकास पर दिया जाता था।

4. शिक्षा की व्यापक पाठ्यचर्या - वैदिक काल में मनुष्य के प्राकृतिक , सामाजिक और आध्यात्मिक, तीनों पक्षों के विकास पर बल दिया जाता था और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यचर्या में अपरा (भौतिक) एवं परा (आध्यात्मिक) दोनों प्रकार के विषयों एवं क्रियाओं को स्थान दिया जाता था। हाँ , यह बात अवश्य है कि उस समय सर्वाधिक बल भाषा , साहित्य, धर्म, दर्शन और नीतिशास्त्र की शिक्षा पर दिया जाता था और ये उस समय गुरूकुलीय शिक्षा के अनिवार्य विषय थे। आज हमारे देश में उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या अतिव्यापक है परन्तु वह बहुपक्षीय नहीं है , मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तीनों पक्षों का विकास नहीं करती।

5. विशिष्टीकरण- हमारे देश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्टीकरण का शुभारम्भ वैदिक काल में ही हो गया था। हाँ , यह बात सत्य है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में तो यह विशिष्टीकरण छात्रों की योग्यता के आधार पर होता था परन्तु उत्तर वैदिक काल में यह छात्रों के वर्ण के आधार पर होने लगा था। आज हमारे देश में ही नहीं , संसार के सभी देशों में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विशिष्टीकरण का क्षेत्र अतिव्यापक हो गया है और छात्रों को उनकी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार विशिष्ट शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने के अवसर दिये जाते हैं।

6. उत्तम शिक्षण विधियों का विकास- वैदिक काल में गुरूओं ने शिक्षण की अनेक उत्तम विधियों- अनुकरण, व्याख्यान, प्रश्नोत्तर, विचार-विमर्श, श्रवण-मनन-निदिध्यासन, तर्क, प्रयोग एवं अभ्यास , नाटक और कहानी का विकास किया था। उस काल में शिक्षण को रोचक और प्रभावी बनाने पर विशेष बल दिया जाता था। यूँ आज मनोविज्ञान के ज्ञान और विज्ञान के आविष्कारों की सहायता से अनेक अन्य उत्तम शिक्षण विधियों का विकास हुआ है परन्तु वैदिक कालीन उपरोक्त विधियों का महत्त्व आज भी है और सदैव रहेगा। हमें उनका आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए।

7. गुरू एवं शिष्यों का अनुशासित जीवन- वैदिक काल में गुरूकुलों के नियम बड़े कठोर होते थे और गुरू एवं शिष्य, दोनों ही इनका पालन करते थे। उस काल में गुरू बहुत अनुशासित जीवन जीते थे, उनकी कथनी और करनी समान होती थी। गुरूओं के आदर्श आहार- विहार और आचार-विचार का शिष्यों पर सीधा प्रभाव पड़ता था और वे भी उचित आहार- विहार और उचित आचार- विचार का पालन करते थे। गुरू और शिष्य दोनों सादा जीवन जीते थे, अनुशासित जीवन जीते थे। सच बात यह है कि आचरण की शिक्षा आचरण द्वारा ही दी जा सकती हैं। आज हमारे देश में आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक स्वयं आदर्श आचरण करें, तभी शिष्य आदर्श आचरण करेंगे।

8. गुरू-शिष्यों के बीच मधुर सम्बन्ध- वैदिक काल में गुरू- शिष्यों के बीच बहुत मधुर सम्बन्ध थे। ऊपर से प्रेम बरसता था और नीचे से श्रद्धा उमड़ती थी। गुरू शिष्यों की पूरी देख- भाल करते थे और उनके सर्वागीर्ण विकास के लिए कठोर परिश्रम करते थे और शिष्य गुरूओं का आदर करते थे , उनके आदेशों का पालन करते थे और उनकी सेवा करते थे। सच बात यह है कि जब तक शिष्यों की गुरूओं में श्रद्धा नहीं होती , वे उनसे कुछ भी नहीं सीख सकते और जब तक गुरू शिष्यों के प्रति समर्पित नहीं होते, वे शिष्यों को कुछ भी सिखा नहीं सकते।

9. गुरूकुलों का उत्तम पर्यावरण और संस्कारप्रधान जीवन पद्ध ति- वैदिक काल में गुरूकुल प्रकृति की सुरम्य गोद में स्थित होते थे। यहाँ शुद्ध वायु और शुद्ध जल प्राप्त होता था और वातावरणा एकदम शान्त होता था। इन गुरूकुलों की दूसरी विशेषता थी- संस्कारप्रधान जीवन पद्धति। इनमें प्रवेश के समय बच्चों का उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार से बच्चों की मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता था, वे ब्रह्मचर्य जीवन को सहज में स्वीकार करते थे और संयमित जीवन जीते थे। नियतिम रूप

से धार्मिक कृत्यों (यज्ञादि) के सम्पादन से उनमें उच्च संस्कारों का निर्माण होता था। शिक्षा पूरी होने पर समावर्तन समारोह होता था। इस समारोह में गुरू शिष्यों को गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की आज्ञा देते थे और उन्हें कर्त्तव्य पालन का उपदेश देते थे। आज की परिस्थितियों में हमारे विद्यालय प्रदूषण रहित स्थानों पर स्थित हों, उनमें पेड़-पौधे हों, फुलवारी हो, उनके आसपास किसी प्रकार का शोर न हो और ध्वनि प्रदूषण न हो। यदि विद्यालयों की कार्य प्रणाली और दिनचर्या को संस्कारप्रधान एवं मूल्य आधारित बनाया जा सके तो फिर सोने में सुहागा समझिए।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के दोष

वैदिक कालीन शिक्षा के दोषो को हम निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं।

1. शिक्षा राज्य का उत्तरदायित्व नहीं- वैदिक काल में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तदायित्व नहीं था, यह व्यक्तिगत नियन्त्रण में थी, उस पर गुरूओं का पूर्ण अधिकार था। परिणामतः शिक्षा का कोई सर्वमान्य स्वरूप विकसित नहीं हो सका , जन शिक्षा का समप्रत्यय विकसित नहीं हो सका और स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं हो सकी। आज की परिस्थितियों में किसी भी देश में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जाता है , हमारे देश भारत में भी। आज सबके लिए शिक्षा के समान अवसर का नारा बुलन्द है।

2. आय के अनिश्चित स्रोत एवं भिक्षाटन- वैदिक काल में गुरूकुलों को आज की भाँति राज्य से कोई निश्चित आर्थिक अनुदान नहीं मिलता था , ये राजा , महाराजा और धनी लोगों की कृपा पर निर्भर करते थे। यही कारण है कि उस काल में कुछ गुरूकुलों की स्थिति अति दयनीय थी। उस काल में सभी गुरूकुलों के छात्र समाज में भिक्षा माँगने जाते थे , यह उस समय के गुरूकुलों की आय का एक मुख्य स्रोत था। कुछ विद्वानों का मत है कि भिक्षाटन से दो- लाभ होते थे- एक तो गुरूकुलों की व्यवस्था चलती थी और दूसरे छात्रों में विनम्रता आती थी। परन्तु आज की परिस्थितियों में भिक्षाटन से न तो विद्यालयों की व्यवस्था की जा सकती है और न छात्रों में विनम्रता विकसित की जा सकती है। इससे तो आज के छात्रों में हीन भावना का ही विकास होगा। यही कारण है कि आज शिक्षा की व्यवस्था के लिए वित्त व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व माना जा ता है। हमारी सरकार को भी अपने इस उत्तरदायित्व को समझना चाहिए।

3. शिक्षा की अमनोवैज्ञानिक संरचना- वैदिक काल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित थी- प्राथमिक एवं उच्च , और उच्च शिक्षा की पाठ्यचर्या बाल एवं किशोरों के मनोविज्ञान के अनुकूल नहीं थी। आज की परि स्थितियों के लिए तो वह एकदम अनुपयुक्त है। आज तो मनोवैज्ञानिकों ने इस तथ्य को उजागर किया है कि शिशु , बाल, किशोर और युवाओं के मनोविज्ञान में बहुत अन्तर होता है अतः शिक्षा को शिशु , बाल, किशोर और युवाओं के मनोविज्ञान के आधार पर शिशु शिक्षा ,

प्राथमिक शिक्षा , उच्च प्राथमिक शिक्षा , माध्यमिक शिक्षा ओर उच्च शिक्षा आदि स्तरों में विभाजित करना चाहिए ओर उच्च शिक्षा को भी भिन्न- भिन्न वर्गों-कला, वाणिज्य, कृषि, विज्ञान, तकनीकी आदि में विभाजित करना चाहिए।

4. अव्यवस्थित पाठ्यचर्या- वैदिक काल में सभी गुरूकुलों की पाठ्यचर्या एक समान नहीं थी , भिन्न-भिन्न गुरूकुलों की पाठ्यचर्या भिन्न- भिन्न थी। उस समय यह धारणा थी कि शिष्यों को जितना अधिक ज्ञान करा दिया जाएगा वे जीवन में उतने ही अधिक ज्ञान करा दिया जाएगा वे जीवन में उतने ही अधिक सफल होंगे। पर इस ज्ञान के स्वरूप के विषय में गुरू एकमत नहीं थे। आज जब शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व हो गया है किसी भी स्तर की शिक्षा की पाठ्यचर्या पूर्व निश्चित होनी आवश्यक है। आज सभी राज्य ऐसा ही प्रयत्न करते हैं, भारत राज्य भी।

5. रटने पर अधिक बल- वैदिक काल में मुद्रण कला का विकास नहीं हुआ था अतः समस्त ज्ञान स्मरण द्वारा सुरक्षित रखा जाता था ; गुरूकुलों में भी शिष्यों को समस्त ज्ञान कण्ठस्थ करना पड़ता था। उस काल में उसी व्यक्ति को योग्य माना जाता था जिसे धर्म , दर्शन, नीतिशास्त्र और अन्य अनुशासनों एवं क्रियाओं सम्बन्धी श्लोक कण्ठस्थ होते थे । आज ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में इतना अधिक विकास हो चुका है कि न तो उसे सूत्र रूप में संजोया- पिरोया जा सकता है और न उसे कण्ठस्थ किया जा सकता है। वैसे भी आज स्मरण पर नहीं, समझने पर बल दिया जाता है।

6. कठोर अनुशासन- प्रारम्भिक वैदिक काल में अनुशासन से तात्प र्य शारीरिक , मानसिक और आत्मिक, तीनों प्रकार के संयम से लिया जाता था। इसकी प्राप्ति के लिए गुरू और शिष्य दोनों बहुत संयम का पालन करते थे , अपने आहार-विहार और आचार-विचार पर नियन्त्रण रखते थे और धर्म और नीति के अनुसार आचरण करते थे। उत्तर वैदिक काल में गुरू के आदेशों और गुरूकुलों के नियमों के पालन को ही अनुशासन माना जाने लगा। तब शिष्यों को गुरू के आदेशों और गुरूकुलों के नियमों का कठोरता से पालन करना होता था। आज के इस लोकतन्त्रीय वातावरण में न तो कठोर नियमों के लिए जगह है ओर न उनके कठोरता से पालन करने की स्थिति है। आज तो बच्चों को कठोर अनुशासन में रखने के स्थान पर स्वतन्त्र वातावरण में रखने पर बल दिया जाता है। पर हमने इस स्वतन्त्र वातावरण के दुष्परिणाम भी देख लिए हैं। अतः आज स्वतन्त्रता और अनुशासन में सन्तुलन रखने की आवश्यकता है।

7. जन शिक्षा का अभाव- वैदिक काल में जन शिक्षा का सम्प्रत्यय ही विकसति नहीं हुआ था। उत्तर वैदिक काल में वर्णानुसार कर्म की शिक्षा देना और शूद्रों को उच्च शिक्षा के अधिकार से वंचित कर देना तो जन शिक्षा का विरोधी कदम था। आज किसी भी देश में जन शिक्षा (एक निश्चित स्तर तक की अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा और अशिक्षित प्रौढ़ो की सामान्य शिक्षा) पर विशेष बल दिया जाता है।

8. स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था का अभाव- यूँ तो वैदिक काल में स्त्रियों को किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नही था लेकिन उस काल में अनेक स्त्रियों ने भिन्न- भिन्न क्षेत्रों में विशेष ज्ञान एवं कौशल की प्राप्ति भी की थी परन्तु इनकी संख्या नगण्य थी। उस काल में स्त्रियों के लिए अलग से गुरूकुल नहीं थे और जिन गुरूकुलों में कन्या प्रवेश ले सकती थी उनमें भी केवल गुरूओं, राजा-महाराजाओं और धनी वर्ग की बच्चियाँ ही प्र वेश ले पाती थी। साफ जाहिर है कि उस काल में स्त्री शिक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं थी। आज संसार के प्राय: सभी देशों में स्त्री- पुरूष में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाता। लोकतन्त्रीय देशों में तो उन्हें सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त है। हमने भी स्त्री शिक्षा के महत्त्व को पहचाना है और आज देश इन्हें किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

9. धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर अधिक बल- वैदिक काल में शिक्षा धर्म प्रधान थी। उस काल में भाषा, साहित्य, धर्म और नीतिशास्त्र पाठ्यचर्या के अनिवार्य विषय थे और इनकी शिक्षा पर सबसे अधिक बल दिया जाता था। छात्रों की आधे से अधिक शक्ति धर्म ग्रन्थों के अध्ययन और धार्मिक क्रियाओं के सम्पादन में व्यय होती थी। यही कारण है कि ज्ञान के क्षेत्र में सर्वप्रथम पदार्पण करने के बाद भी हमारा देश भौतिक दौड़ में बहुत पीछे रह गया। यूँ आज हम आध्यात्मिक विकास के स्थान पर भौतिक विकास के लिए अधिक प्रयत्नशील हैं। पर आवश्यकता इस बात है कि मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तीनों पक्षों के विकास पर समान बल दिया जाए।

1.6 शारांस Summary

वैदिक शिक्षा प्रणाली आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली का नींव का पत्थर है। उसी के आधार पर आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। सच बात तो यह है कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली हमारी संस्कृति पर आधारित थी और संस्कृति से हम अलग हो नहीं सकते। आज भी हमारी शिक्षा के उद्देश्य मूल रूप से वही हैं जो वैदिक काल में थे। वैदिक काल की भाँति हम आज भी समस्त ज्ञान- विज्ञान, कौशल और तकनीकी को शिक्षा की पाठ्यचर्या में सम्मिलित करते हैं। आज भी हम शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। और आधुनिक काल की शिक्षा प्रणाली और वैदिक शिक्षा प्रणाली में जो अन्तर है वह तो विकास के क्रम में होना स्वाभाविक ही था।

कुछ मिलाकर यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन शिक्षा प्रणाली उस समय की संसार की श्रेष्ठतम शिक्षा प्रणाली परन्तु आज के भारतीय समाज के स्वरूप और उसकी भावी आवश्यकताओं की दृष्टि से उसके कुछ तत्व ग्रहणीय हैं और कुछ तत्त्व त्याज्य हैं। उसके ग्रहणीय तत्त्वों को ही हम उसके गुण मानते हैं और त्याज्य तत्त्वों को दोष। उसके ग्रहणीय तत्त्वों में मुख्य हैं-